शोध मंथन, 2017 ISSN: (P): 0976-5255, (e) : 2454-339X, Impact Factor 3.8942 (ICRJIFR)
UGC Aproved Journal No. 40908

उत्तराखण्ड में ब्रिटिश शासन (1815–1947) के अर्न्तविरोध

वी0पी0 राकेश
राजनीति शास्त्र विभाग, एन0ए0एस0 कॉलेज, मेरठ

सारांश

भारत की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के केन्द्रीय क्षेत्रों में जैसे– गंगा, ब्रह्मपुत्र के मैदानी क्षेत्रों, पंजाब, दक्षिण के पठार और तटीय भारत आदि में औपनिवेशिक शोषण के प्रतिरूप व प्रतिप्रभावों पर गहन व व्यापक शोध हो चुके हैं, परन्तु परिधीय क्षेत्रों में जैसे जनजातीय अंचलों व सम्पूर्ण हिमालयी क्षेत्र आदि में औपनिवेशिक शासन ने अर्थव्यवस्था में किन–किन विसंगतियों को उत्पन्न किया और उनके दुष्प्रभाव वर्तमान आर्थिक संरचना में किस प्रकार अन्तर्निहित हो गये, पर यदकिंचित ही जानकारी उपलब्ध है। उल्लेखनीय है कि हिमालयी–क्षेत्र स्वतन्त्रता के पश्चात् अनवरत् रूप से उद्वेलित रहा है। पूर्वोत्तर हिमालय और कश्मीर हिमालय और पृथकतावाद व जातीय हिंसा, उत्तराखण्ड हिमालय में चिपको आन्दोलन व अन्य व आन्दोलन, मद्यनिषेध आन्दोलन व विगत दशक में पृथक राज्य आन्दोलन–पूरे राष्ट्र की अन्तः चेतना के साथ अर्थव्यवस्था पर भी गम्भीर बोझ डालते है। अतः इन क्षेत्रों विगत इतिहास में छुपे उन तत्वों को समाधान करना आवश्यक है जो इनके पिछड़ेपन के कारण है। इस शोध पत्र में उत्तर प्रदेश 13 उत्तरी जनपदों को मिलाकर नव सृजित उत्तराखण्ड राज्य (8–9 नवम्बर, 2000) के राजनैतिक इतिहास में इस क्षेत्र के पिछड़ेपन कारणों को चिह्नित करने का प्रयास किया गया है।

शोध पत्र का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैः

वी0पी0 राकेश,
''*उत्तराखण्ड में ब्रिटिश शासन (1815–1947) के अर्न्तविरोध*'',
शोध मंथन जून 2017,
पेज सं0 1–6
http://anubooks.com/?page_id=2030
Article No. 1(SM408)

प्रस्तावना

भारत की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के केन्द्रीय क्षेत्रों में जैसे– गंगा, ब्रह्मपुत्र के मैदानी क्षेत्रों, पंजाब, दक्षिण के पठार और तटीय भारत आदि में औपनिवेशिक शोषण के प्रतिरूप व प्रतिप्रभावों पर गहन व व्यापक शोध हो चुके हैं, परन्तु परिधीय क्षेत्रों में जैसे जनजातीय अंचलों व सम्पूर्ण हिमालयी क्षेत्र आदि में औपनिवेशिक शासन ने अर्थव्यवस्था में किन–किन विसंगतियों को उत्पन्न किया और उनके दुष्प्रभाव वर्तमान आर्थिक संरचना में किस प्रकार अन्तर्निहित हो गये, पर यदकिंचित ही जानकारी उपलब्ध है। उल्लेखनीय है कि हिमालयी–क्षेत्र स्वतन्त्रता के पश्चात् अनवरत् रूप से उद्वेलित रहा है। पूर्वोत्तर हिमालय और कश्मीर हिमालय और पृथकतावाद व जातीय हिंसा, उत्तराखण्ड हिमालय में चिपको आन्दोलन व अन्य व आन्दोलन, मद्यनिषेध आन्दोलन व विगत दशक में पृथक राज्य आन्दोलन–पूरे राष्ट्र की अन्तः चेतना के साथ अर्थव्यव्सथा पर भी गम्भीर बोझ डालते है। अतः इन क्षेत्रों विगत इतिहास में छुपे उन तत्वों को समाधान करना आवश्यक है जो इनके पिछड़ेपन के कारण है। इस शोध पत्र में उत्तर प्रदेश 13 उत्तरी जनपदों को मिलाकर नव सृजित उत्तराखण्ड राज्य (8–9 नवम्बर, 2000) के राजनैतिक इतिहास में इस क्षेत्र के पिछड़ेपन कारणों को चिह्नित करने का प्रयास किया गया है।

ब्रिटिश शासन और राजनैतिक स्थिरता :

उत्तराखण्ड पर नेपाल के आधिपत्य (1790–1815) से पूर्व उत्तराखण्ड गढ़वाल और कुमायूँ दो स्वतन्त्र राज्यों में बंटा था। फरवरी 1790 में कुमायूँ की राजधानी अल्मोड़ा पर नेपाली सेना के अधिकार के साथ ही कुमायूँ में चन्द वंश के शासन का सदा के लिए पराभव हो गया। लगभग 13 वर्ष पश्चात् 1803 में ही गढ़वाल राज्य के अधिकार भाग पर नेपाल का अधिकार हो गया था। लेकिन फिर भी गढ़नरेश प्रतिरोध करते रहे। जनवरी 1804 में देहरादून में खुडबुडा के मैदान में गढ़नरेश प्रद्युमन शाह के वीरगति प्राप्त होते ही यह प्रतिरोध भी समाप्त हो गया और गढ़वाल पर नेपाल का आधिपत्य स्थापित हो गया (डबराल वि0स0 2030, पृष्ठ 71–118)। ये दोनों राज्य भी मध्यकाल के पूर्वार्द्ध तक छोटे–छोटे राज्यों (ठकुराईयों) में बंटे थे। गढ़वाल के सम्बन्ध में ऐतिहासिक साक्ष्य, अभिलेख और जनश्रुतियां है कि यह राज्य 52 गढ़ों में विभाजित था, जिसे 16वीं शताब्दी में महाराज अजयपाल (राज्य अवधि 1500–1578 तक) ने गढ़वाल राज्य में संगठित किया था (भक्त दर्शन, 1980, पृष्ठ 9–25)। ये ठकुराईयों और बाद में एकीकृत गढ़वाल तथा कुमायूँ राज्य भी परस्पर आपस में लड़ते रहते थे, जिससे अपार धन जन की हानि व सदैव अस्थिरता का वातावरण बना रहता है। इस समय के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति ''गढ़वाल कटक, कुमायूँ सटक गढ़वाल सटक प्रचलित हैं। अर्थात् कुमायूँ की जनता जब देखती थी कि गढ़वाल की सेना आ रही है तो (कुमायूँ) के सीमान्त पर निवास करने वाली जनता भी गढ़वाल में भाग जाती थी और जब कुमायूँ की सेना गढ़वाल पर आक्रमण करती तो गढ़वाल की जनता भी कुमायूँ में भाग आती थी। असुरक्षा का यह माहौल, उत्तरखण्ड में ब्रिटिश आधिपत्य की स्थापना तक अनवरत बना रहा है।

ब्रिटिश ने शासन उत्तराखण्ड को नेपाल के लौह शासन से मुक्ति दिलाई थी तथा ब्रिटिश

ने सामन्ती अव्यवस्था और अस्थिरता को समाप्त कर व्यवस्था और स्थिरता प्रदान की थी और सामन्ती शासन के क्रूरतम स्वरूप दासता को समाप्त किया था। अतः प्रारम्भ में ब्रिटिश प्रशासकों को प्रतिरोध के स्थान पर सहयोग ही प्राप्त हुआ यहां तक कि 1857 के स्वतंत्रता संग्रम के दौरान भी देहरादून में हुई छुटपुट घटनाओं को छोडकर शान्ति ही रही। टिहरी के राजा सुदर्शन शाह ने मसूरी में अंग्रेजों की रक्षा के लिए अपनी फौज तैनात कर दी थी।

वनसम्पदा पर ब्रिटिश आधित्पय और स्थानीय जनता के अधिकारों का अर्न्तविरोः

लेकिन कालान्तर में एक ओर उत्तराखण्ड में ब्रिटिश शासन और स्थानीय जनता के हितों का अर्न्तविरोध स्पष्ट तौर पर टकराने लगे और दूसरी ओर राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रखर होने से उत्तराखण्ड में स्वतन्त्रता आन्दोलन भी तीव्र होता गया। स्वतंत्रता आन्दोलन की सभी राजनैतिक धाराओं में इस क्षेत्र के लोग सम्मिलित हुए, उन्होंने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया। गढ़वाल राइफल्स के सैनिकों ने वीर चन्द्र सिंह गढ़वाली के नेतृत्व में, सविनय अवज्ञा आन्दोलन की प्रबल धारा में, पेशावर में आन्दोलकारियों पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया था (23 अप्रैल, 1930)। 1857 के पश्चात् यह पहली घटना थी जब ब्रिटिश सेना के भारतीय सैनिकों ने अपने देशवासियों पर गोली चलाने से इन्कार किया था। इस घटना से ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन को ज्ञात हो गया था कि भारत को भारतीय सेना व भारतीय संसाधनों से पराधीन नहीं रखा जा सकता (राहुल सांस्कृत्यायन 1951)। इसी प्रकार आई0एन0के0 सैनिकों/अधिकारियों में केवल उत्तराखण्ड से एक अधिकारी कैप्टन केसरी चन्द जोशी को ही ब्रिटिश शासन ने मृत्यु दण्ड (2 मई, 1945) दिया था। स्वतन्त्रता के उपरान्त भी भारत संघ में विलय के लिए आन्दोलन में, टिहरी रियासत के सैनिकों द्वारा नागेन्द्र सकलानी तथा मोलू राम (10 जनवरी, 1948) कीर्तिनगर में शहीद कर दिये गये (भक्त दर्शन 1980, पृष्ठ 592, 593 एवं 663)।

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासकों का प्रारम्भ में उत्साहपूर्वक स्वागत करने तथा कालान्तर में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में आगे बढ़कर भाग लेने वाले उत्तराखण्ड के ब्रिटिश शासनकाल में, शेष भारत से सम्बन्ध आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से प्रगाढ़ हुए और उनमें उल्लेखनीय गुणात्मक अन्तर भी आये। ब्रिटिश शासन से पूर्व हिमालय की अर्थव्यवस्था में उच्च जन्मदर, उच्च मृत्युदर तथा अनेक सामाजिक कुरीतियों के कारण जनसंख्या लगभग स्थिर थी। ब्रिटिश शासन में सामाजिक–कुरीतियों के उन्मूलन उन पर वैधानिक प्रतिबन्ध, महामारियों की रोकथाम और जंगलों के विनाश से जंगली जानवरों के नरभक्षी होने की घटनाओं की कमी से जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुयी। जहां कभी पशुचारकों के अस्थाई आवास थे, वहां स्थाई गांव बस गये थे (पातीराम परमार 1916, पृष्ठ 212–13)। ब्रिटिश शासन के प्रारम्भिक वर्षों में तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या से किसी आर्थिक–सामाजिक तनाव की स्थिति उत्पन्न नहीं हुई। इस का प्रमुख कारण औपनिवेशिक शासकों की कृषि भूमि विस्तार की नीति थी।

उत्तराखण्ड के कष्षकों ने पहाड़ी ढ़ालों को खोदकर तथा वन और झाड़ियों को काटकर कषि का अभूतपूर्व विस्तार। लेकिन शीघ्र ही सरकार के द्वारा आरक्षित वनों के अन्तर्गत क षि करने पर प्रतिबन्ध लगाने और ग्रामों की सीमा निर्धारित हो जाने से कषि भूमि विस्तार की

सम्भावनायें पूरी तरह समाप्त हो गयी। फलस्वरूप निरन्तर बढ़ती हुयी जनसंख्या के समक्ष आजीविका का संकट गम्भीर होता चला गया। इस क्षेत्र के अन्तर्गत उद्योगों में रोजगार के अवसर उपलब्ध न होने से रोजगार की तलाश में प्रवास पर जाने के अलावा अन्य कोई विकल्प शेष नहीं रह गया। ब्रिटिश शासन के दौरान प्रारम्भ हुयी कर्मकरों के प्रवास की यह प्रवषति वर्तमान में न केवल विद्यमान है बल्कि इसका भयावह रूप ले लिया है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से जनगणना में विषम लिंगानुपात अर्थात् कुल जनसंख्या में नारियों का आधिक्य इस सत्य की पषष्टि करता है कि उत्तराखण्ड हिमालय की अर्थव्यवस्था में गम्भीर संरचात्मक बदलाव ब्रिटिश शासनकाल में ही प्रारम्भ हुये। शनैः शनैः यह क्षेत्र शेष भारत के औद्योगिक नगरों व प्रशासनिक केन्द्रों को सस्ती श्रमशक्ति का प्रमुख आपूर्तिकर्ता बन गया। उत्तराखण्ड के आठ जिलों में, भारी श्रमिक प्रवास के कारण जनगणना 2011 के अनुसार प्रति हजार पुरूषों पर 1016 से 1115 स्त्रियां हैं, वर्तमान में लगभग 1503 ग्राम जनशून्य होकर ''घोस्ट विलेज'' बन गये हैं।

ब्रिटिश शासन इस क्षेत्र की प्राकृतिक सम्पदा से राजस्व वसूल करने की सीमाओं से भलीभांति परिचित थे, इसलिये वे इस क्षेत्र को अपने क्षेत्र के अल्पराजस्व प्रदान करने वाले क्षेत्रों में सम्मिलित करते थे। इसी कारण उन्होंने अन्य क्षेत्रों की तुलना में उत्तराखण्ड भूराजस्व की दरें अपेक्षाकृत कम रखी थी। इस क्षेत्र की वन सम्पदा से भी वे भलीभांति परिचित थे। ब्रिटिश शासकों को यह स्पष्ट था कि उत्तराखण्ड के वन ही इसकी प्रमुख सम्पदा है जिसका दोहन वे साम्राज्य के हितों और अपनी विलासितापूर्ण जीवन शैली के लिये कर सकते है। इस नीति का अनुसरण कर ही उन्होंने केवल अपने प्रत्यक्ष स्वामित्व के क्षेत्रों में वन सम्पदा पर व्यवहारिक रूप से राज्य का एकाधिकार स्थापित किया और उनका व्यापारिक दोहन किया (रामचन्द्र गुहा, 1999, पृष्ठ 23)। टिहरी रियासत के वनों के सन्दर्भ में भी यही नीति अपनायी गयी। टिहरी रियासत में वर्ष 1858, 1860, 1962 में ब्रिटिश ठेकेदार विल्सन को टिहरी के वनों का ठेकार मात्र रूपये 6,000 एवं 4,000 वार्षिक पर दे दिया था। विल्सन ने ही स्लीपरों को नदियों में बहाकर लकड़ी के परिवहन की लागत रहित तकनीकी आविष्कार की थी। यदि भागीरथी नदी के किनारे पर स्थित चट्टानों स्लीपरों के प्रवाह में बाधा उत्पन्न करती थी तो उन चट्टानों का बारूद से उड़ा दिया जाता था। इस नीति के फलस्वरूप उत्तरी भारत में रेलवे लाइन के प्रसार के समय स्लीपरों की कमी की समस्या का समाधान भी उत्तराखण्ड के वनों के दोहन से ही सम्भव हुआ। अतः ब्रिटिश शासन के समय शेष भारत में रेलवे लाइन के प्रसार में उत्तराखण्ड के वनों महत्वपूर्ण योगदान दिया।

ब्रिटिश शासकों ने उत्तराखण्ड में, रमणीक दृश्यावलियों और उत्कृष्ट जलवायु के कारण अपने आमोद–प्रमोद के स्थल जैसे मसूरी, नैनीताल, कौसानी आदि विकसित किये। कालान्तर में ब्रिटिश अफसरों सैन्य अधिकारियों के अतिरिक्त भारतीय नव धनाड्य वर्ग के लोग भी इन स्थलों पर भ्रमण हेतु आने लगे। गढ़वाल हिमालय में तीर्थ यात्रा की सुदीर्घ परम्परा है। इन सैरगाहों के विकास ने शेष भारत के लिये पर्यटन के नये केन्द्र उपलब्ध करवाये और गढ़वाल हिमालय में आजीविका के नये अवसर प्रदान किये।

ब्रिटिश शासन से पूर्व गढ़वाल की अर्थव्यवस्था अपनी न्यून जनसंख्या और सीमित आवश्यकता के कारण स्थैतिक रूप से आत्मनिर्भर थी। तथापित कतिपय वन उपजों तथा यदाकदा कृषि उपजों का भी उत्तराखण्ड से बाहर विक्रय कर लिया जाता था लेकिन ब्रिटिश शासनकाल में कृषि उत्पादकता में ठहराव और वनों के विनाश से यह प्रवृत्तियों पूरी तरह बन्द हो गयी। ब्रिटिश शासनकाल में गढ़वाल अन्न, वस्त्र, औषधियों और जीवन की आवश्यकता की लगभग प्रत्येक वस्तु का शुद्ध आयातक बन गया। इतना ही नहीं वन विनाश से उत्पन्न पर्यावरण संकट की समस्या भी शनैः–शनैः गम्भीर होती चली गयी। वन विनाश के ये दुष्प्रभाव गढ़वाल और उत्तराखण्ड तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण उत्तरी भारत को आज भी दुष्प्रभावित करते है।

संक्षेप में आर0सी0 दत्त की यह टिप्पणी की अंग्रेजी शासन ने भारत में केन्द्रीय राजनैतिक व प्रशासन प्रशासनिक सत्ता तो मजबूती से स्थापित की परन्तु भारत की राष्ट्रीय सम्पत्ति के स्रोतों का न विस्तार किया न विकास (गाडगिल डी0आर0, 1981, पृष्ठ 8)। उत्तराखण्ड पर भी लागू होती हैं फलस्वरूप शेष भारत की तरह उत्तराखण्ड में भी उत्पादकता की वृद्धि रूक गयी। भारत के साथ ही उत्तराखण्ड की कृषि भी पंगु हो गयी उद्योग धंधे समाप्त होते गये। अकाल और दरिद्रीकरण की नियति बन गयी। यह उल्लेखनीय है कि औपनिवेशिक दोहन की प्रक्रिया उत्तराखण्ड में शेष भारत से कुछ अलग थी।

कषि योग्य भूमि की कमी, उसकी कम उत्पादकता तथा अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति हेतु वन विनाश कर कषि भूमि के विस्तार को प्रोत्साहित करने के लिये ब्रिटिश शासकों ने उत्तराखण्ड में लगान की दरें शेष प्रान्त से कम ही रखी फलस्वरूप लगान की कमर तोड़ दरों के कारण शेष भारत में उपजे किसानों के आन्दोलन की तरह, उत्तराखण्ड में किसान आन्दोलन कम ही हुये। इस क्षेत्र उत्तराखण्ड में ब्रिटिश शास्त्रों ने सामुदायिक संसाधन आधार वन और चारागाह पर सरकार का स्वामित्व स्थापित करने का कार्य किया। इसलिए उत्तराखण्ड में वन आन्दोलनों की लम्बी श्रंखला है। परन्तु उत्तराखण्ड के औपनिवेशिक शोषण पर गम्भीर शोध अपेक्षित हैं। यहां तक की आर0सी0 दत्त ने भी उत्तराखण्ड के सम्बन्ध में एक छोटी सी टिप्पणी, नेपाल से लड़ाई में कम्पनी के हाथ हिमालय का कुछ इलाका लगा मात्र की है। परन्तु यह भी तथ्य है कि उत्तराखण्ड के औपनिवेशिक दोहन दुष्प्रभावों को पूरी उत्तरी भारत आज भी पर्यावरण संकट के रूप में झेल रहा है। यह भी तयि है कि स्थानीय सामन्तों के एवं जनता ने गढ़वाल और कुमायूं में ब्रिटिश शासन का प्रथम विश्वयुद्ध के समय तक स्वागत ही किया। क्योंकि ब्रिटिश शासकों ने जनता को वनों को काट कर खेती की जमीन विस्तार करने की खुली छूट दी थी परन्तु इस स्थिति ने बाद में गम्भीर पर्यावरण संकट पैदा किये, उत्तराखण्ड से श्रम शक्ति के पलायन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी।

ब्रिटिश शासकों ने उत्तराखण्ड में श्रम शक्ति के प्रबन्धन की विशिष्ट नीति अपनाकर इस क्षेत्र को ''सस्ते श्रमिकों का संरक्षित क्षेत्र'' बनाने का कार्य किया। उन्नीसीवीं सदीं के दूसरे दशक में नेपाल को परास्त करने के उपरान्त, उत्तरी सीमान्त की ओर से अंग्रेज अपने प्रभुत्व के विस्तार की नगण्य सम्भावनाओं के कारण, इस क्षेत्र में परिवहन विकास पर ध्यान नहीं दिया। ब्रिटिश

शासकों की परिवहन नीति स्पष्टतः अपने सैनिक महत्व के स्थलों एवं सैरगाहों को सुगम्य बनाने की थी। ब्रिटिश शासन की इस उपेक्षापूर्ण नीति के कारण–परिवहन व्यवस्था के विकास के लिए जन आन्दोलन हुये है। उत्तराखण्ड की दुर्गम्यता के आधार पर ब्रिटिश शासक शासकीय कार्यों में जबरिया श्रम कुल बेगार की प्रथा को न्यायोजित ठहराते रहे, जबकि उन्होंने स्वयं अपने शासन के प्रादुर्भाव पर (1815) ही दास प्रथा को तात्कालिक प्रभाव से समाप्त कर दिया था। यह विसंगति एक ऐसे क्षेत्र में जहां राजस्व के अपहरण की और अपने देश के माल को खपाने की सभावनायें कम हो, 'प्रत्यक्ष श्रम का उपहरण' करने का सबसे घृणित व अमानवीय रूप था (शेखर पाठक)।

निष्कर्ष

ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने भारतीय राष्ट्रवाद के उत्थान को अवरोधित करने के लिये यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि कुछ विशिष्ट जातियां ही अच्छे सिपाही पैदा कर सकती। इस नीति का अनुसरण कर उन्होंने गढ़वाल में भी सेना की एक अलग रेजीमेन्ट गढ़वाल रेजीमेन्ट खड़ी की। इस नीति का रोजगार की तलाश करते गढ़वालियों ने व्यापक स्वागत किया और दोनों महायुद्धों में उल्लेखनीय भूमिका भी निभाई। भारतीय राष्ट्रवाद के उभ्युदय से गढ़वाल को बचाकर उसे सैनिक व मजदूर आपूर्ति के स्रोत बनाने की ब्रिटिश नीति भी इस क्षेत्र के पिछड़ेपन के कारण में एक ऐतिहासिक कारण है। परन्तु राष्ट्रवाद से यह सेना भी अप्रभावित नहीं रही। 1857 की क्रान्ति के पश्चात् 23 अप्रैल 1936 को पहली बार भारतीय सेना के किसी अंग ने सरकार के आदेशों को मानने से इन्कार कर दिया। फलस्वरूप ब्रिटिश शासकों को यह अनुभव हो गया कि भारत को भारत के संसाधनों और जनता का उपयोग कर पराधीन नहीं रखा जा सकता। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में यह निर्णायक मोड़ सिद्ध हुआ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *शिव प्रसाद डबराल (विक्रमी सम्वत् 2030) उत्तराखण्ड का राजनैतिक तथा सांस्कषतिक इतिहास, भाग–5 गोरख्याणी (1790–1815), पष्ठ 71–118*
2. *भक्त दर्शन (1980) गढ़वाल की दिवंगत विभूतियां, पष्ठ 9 से 25 तक*
3. *राहुल सांस्कष्त्यायन (1951) हिमालय परिचय, भाग–1, गढ़वाल*
4. *भक्त दर्शन (1980) गढ़वाल की दिवगंत विभूतियां, पष्ठ 592, 593 एवं 663*
5. *प्रो0डी0आर0 गाडगिल (1981)– भूमिका ''रोमेश दत्त–भारत का आर्थिक इतिहास भाग एक प्रारम्भिक ब्रिटिश राज (1757–1837), पष्ठ 8 प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, इर्न दिल्ली*
6. *त्ंउ बैंदकतं ळनीं ;1999द्धए जैम न्दुनपमज ॅववकए चंहम 23*
7. *च्ंजप त्ंउ च्तउंत ;1916द्ध ळंतींस ।दबपमदज डवकमतद च्ंहम 212.13*
8. *शेखर पाठक, उत्तराखण्ड में कुली बेगर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।*